**ओ३म्**

**आज 151 वीं जयन्ती 26 अप्रैल पर**

**‘महर्षि दयानन्द के आदर्श शिष्य व अनुकरणीय मनीषी पं. गुरूदत्त विद्यार्थी’**

**-मनमोहन कुमार आर्य, देहरादून।**

महर्षि दयानन्द के साक्षात् शिष्यों में प्रथम व यशस्वी शिष्य पं. गुरूदत्त विद्यार्थी का जन्म 26 अप्रैल, 1864 ई. को अविभाजित भारत के पश्चिमी पंजाब राज्य के मुलतान नगर में हुआ था। महर्षि दयानन्द के जीवनकाल 1825-1883 में देश भर के अनेक लोग उनके सम्पर्क में आये जिनमें से कई व्यक्तियों को उनका शिष्य कहा जा सकता है परन्तु सभी शिष्यों में पं. गुरूदत्त विद्यार्थी उनके अनुपम व अन्यतम शिष्य थे। आपके पिता लाला रामकृष्ण जी फारसी भाषा के असाधारण विद्वान थे तथा राजकीय सेवा में अध्यापक थे। आपकी शिक्षा उर्दू और अंग्रेजी में मुलतान व लाहौर में सम्पन्न हुई थी। जन्म से ही आप अत्यन्त मेधावी थे और वैरागी प्रकृति के थे। विद्यार्थी जीवन व युवावस्था में पुस्तकों को पढ़ने में आपकी सर्वाधिक रुचि वा लगन थी। जो भी पुस्तक हाथ में आती थी उसे आप अल्प समय में ही आद्योपान्त पढ़ डालते थे। बचपन में ही आपने उर्दू व अंग्रेजी के प्रसिद्ध विद्वानों के ग्रन्थों को पढ़ लिया था। उर्दू में आप कविता भी कर लेते थे। विज्ञान आपका प्रिय विषय था। युवावस्था में पाश्चात्य वैज्ञानिकों की तरह ही आप नास्तिक तो नहीं परन्तु ईश्वर के अस्तित्व के प्रति संशयवादी अवश्य हो गये थे। लाहौर स्थित देश के सुप्रसिद्ध गवर्नमेंट कालेज के आप सबसे अधिक मेधावी विद्यार्थी थे तथा अपनी कक्षा में सर्वप्रथम रहा करते थे। विज्ञान में एम.ए. की परीक्षा में भी आप पूरे पंजाब में सर्वप्रथम रहे थे। उन दिनों पंजाब में सारा पाकिस्तान एवं दिल्ली तक भारत के अनेक भाग सम्मिलित थे। यद्यपि आप व्यायाम आदि करते थे और स्वास्थ्य का ध्यान भी रखते थे परन्तु पढ़ने का शौक ऐसा था कि इस कारण से आप असावधानी कर बैठते थे। 26 वर्ष की आयु पूरी होने से एक सप्ताह पूर्व ही आपका देहान्त हो गया था। इस कम आयु में भी आपने देश, धर्म, समाज हित के अनेक प्रशंसनीय व अविस्मरणीय कार्य किए जिससे आपको भविष्य में स्मरण किया जाता रहेगा। आपने महर्षि दयानन्द के बाद स्वयं को उन जैसा बनाने का प्रयास किया था और पूरे नहीं तो काफी कुछ बने भी थे। यदि जीवन कुछ अधिक मिलता तो वह देश और समाज सहित विश्व के लिए वन्दनीय होता। वैदिक विद्याओं एवं वैदिक धर्म के प्रचार-प्रसार में आपकी भी वही भावना थी और वैसा ही उत्साह था जैसा कि महर्षि दयानन्द में देखने को मिलता था। इसलिए सभी मित्र और निकट सहयोगी आपको वैदिक धर्म का सच्चा विद्वान व नेता स्वीकार करते थे। आपका डी.ए.वी स्कूल की स्थापना में भी महत्वपूर्ण योगदान था जो सदा स्मरणीय रहेगा।

**Iak- xq:nRr fo|kFkhZ**

**eueksgu dqekj vk;Z**

 पं. गुरूदत्त विद्यार्थी को इस बात का श्रेय प्राप्त था कि उन्होंने महर्षि दयानन्द के न केवल दर्शन ही किए थे अपितु दीपावली के पर्व के दिन 30 अक्तूबर, 1883 ई. को अजमेर में उनकी मृत्यु के दृश्य को प्रत्यक्ष रूप से सामने खड़े होकर देखा था। उन दिनों आप ईश्वर के अस्तित्व के प्रति संशयवादी थे। मृत्यु के समय जिन शारीरिक कष्टों से महर्षि दयानन्द ग्रसित थे और उस पर भी जिस सहजता से उन्होंने मृत्यु का संवरण किया, उसे देखकर पण्डित गुरुदत्त जी दंग रह गये थे और उनका नास्तिकता मिश्रित संशयवाद तत्क्षण दूर हो गया था। इस घटना के बाद तो आपका जीवन पूरी तरह से ज्ञानार्जन, वेदों के प्रचार-प्रसार, ग्रन्थों के लेखन व सामाजिक हित के कार्यों में व्यतीत हुआ। इन कार्यों में जहां कुछ पत्ऱ-पत्रिकाओं का सम्पादन व उच्चस्तरीय लेखों का प्रणयन शामिल था वहीं उन्होंने दयानन्द एंग्लो वैदिक स्कूल की स्थापना में सर्वाधिक महत्वपूर्ण भूमिका भी आपने निभाई थी। डी.ए.वी. स्कूल के लिए धन संग्रह का जो कार्य किया गया उसमें सबसे प्रमुख व प्रभावशाली सफल भूमिका आपकी ही थी। आप जिस स्थान पर भी डीएवी स्कूल की स्थापना पर उपदेश करते थे तो लोग भावविभोर होकर अपना समस्त वा अधिकांश धन दान कर देते थे। वह डीएवी के आन्दोलन से पूरे उत्साह से जुड़े थे और जब डीएवी में अंग्रेजी शिक्षा का प्रभाव अधिक हो गया और संस्कृत व हिन्दी भाषा को उसका उचित स्थान नहीं मिला, तो आप उससे पृथक भी हो गये थे। यदि आपने डीएवी के लिए देश भर में घूमकर धनसंग्रह करने में अपना योगदान न दिया होता तो हम कल्पना कर सकते हैं कि शायद डीएवी आन्दोलन सफल न हुआ होता, अतः डीएवी के विकास व उन्नति में आपका योगदान प्रमुख, सर्वोपरि एवं चिरस्मरणीय रहेगा।

 महर्षि दयानन्द के बाद उनके साक्षात शिष्यों में आर्ष संस्कृत व्याकरण का कोई प्रमुख प्रथम विद्वान हुआ तो वह आप ही थे। आपने आर्य समाज, लाहौर की सदस्यता लेकर संस्कृत का अध्ययन आरम्भ कर दिया था। आप मेधावी तो थे ही, इसलिये संस्कृत का आपका अध्ययन शीघ्र ही पूरा हो गया था। न केवल आपने संस्कृत पढ़ी अपितु उस युग में आप संस्कृत के सबसे बड़े समर्थक व प्रचारक थे। यह बात तब थी जब कि आपका अंग्रेजी पर असाधारण अधिकार था और उर्दू के भी अच्छे जानकार थे। संस्कृत के प्रचार-प्रसार का कार्य महर्षि दयानन्द के बाद यदि प्रथम प्रभावशाली रूप से किसी ने किया तो वह पं. गुरुदत्त जी ने ही किया। आपने अपने घर पर ही संस्कृत श्रेणी व कक्षायें खोली हुई थी जिसमें सरकारी सेवा में कार्यरत उच्च अधिकारी व कर्मचारी आदि अच्छी संख्या में संस्कृत का अध्ययन किया करते थे। संस्कृत पर आपके असाधारण अधिकार का प्रमाण आपका ईश, माण्डूक्य व मण्डूक उपनिषदों का अंग्रेजी में किया गया प्रभावशाली व प्रशंसनीय भाष्य वा अनुवाद है। यह कार्य उन दिनों सरल नहीं था और इस कोटि का भाष्य अंग्रेजी में किया जाना शायद् अन्य किसी भारतीय के लिए भी सम्भव नहीं था।

 विश्व व भारत में धर्म व संस्कृति का मूल स्रोत व आधार वेद और वैदिक साहित्य है जो संसार में प्राचीनतम व उत्पत्ति व रचना की दृष्टि से प्राचीनतम है। अंग्रेज भारत में आये तो भारतीयों को गुलाम बनाया और चाहते थे कि उनका शासन चिरस्थाई हो। उन्होंने भारत के वैदिक धर्म व इसके धर्म ग्रन्थों का अध्ययन भी किया व कराया जिससे यह निष्कर्ष निकला कि भारतीय धर्म व संस्कृति के ग्रन्थों का मिथ्यानुवाद व तिरस्कार किये बिना अंग्रेजों का राज्य स्थाई रूप नहीं ले सकेगा। अतः प्रो. मैक्समूलर आदि अनेक अंग्रेज विद्वानों ने संस्कृत का अध्ययन कर वेद और वैदिक साहित्य पर असत्य, भ्रामक, अविवेकपूर्ण व पक्षपातपूर्ण टिप्पणियां कीं। वह अपने उद्देश्य में अवश्य सफल होते यदि महर्षि दयानन्द का भारत में प्रादूर्भाव न हुआ होता। महर्षि दयानन्द ने भारत को स्थाई रूप से गुलाम बनाने के मार्ग को वेदों के सत्यस्वरूप का प्रचार करके अवरुद्ध कर दिया और देश का धर्मान्तरण कर उसे स्थाई रूप से गुलाम बनाने का अंग्रेजी हकूमत का षडयन्त्र विफल कर दिया। एक ओर जहां सभी विदेशी विद्वानों ने सायण वा महीधर के भाष्यों को अपने अध्ययन व प्रचार का साधन व उद्देश्य बनाया, वहीं महर्षि दयानन्द ने अपने संस्कृत व वैदिक साहित्य के अपूर्व वैदुष्य से सायण, महीधर आदि सभी वेदभाष्यकारों की सप्रमाण त्रुटियां इंगित कर उन्हें मिथ्या व अयथार्थ सिद्ध किया। महर्षि दयानन्द की मृत्यु उनके विरोधियों द्वारा विषपान कराये जाने से 30 अक्तूबर, सन् 1883 को अजमेर में हुई। उनके समय व बाद के समय में विदेशियों द्वारा भारतीय धर्म व संस्कृति मुख्यतः वेद और वैदिक साहित्य पर आक्षेप होते रहे जिसका प्रबल प्रतिवाद व सप्रमाण खण्डन पं. गुरुदत्त विद्यार्थी ने अपने अंग्रेजी लेखों व पुस्तकों के द्वारा किया। यहां हम उनके अंग्रेजी में लिखे गये लघु व अन्य ग्रन्थों का परिचय देना उचित समझते हैं। उनके ग्रन्थ हैं - The Terminology of the Vedas, The Terminology of the Vedas and the European Scholars, Origin of Thought and Language, Vedic Texts Nos. 1-3 (Vayu Mandal, Water and Grihastha), Ishopanishat, Mandukyopanishat, Mundakopanishat, Evidences of Human Spirit, The Realities of Inner Life, Pecuniomania, Righteousness of Unrighteousness of Flesh Eating, Man’s Progress Downwards, The Nature of Conscience, Conscience and the Vedas, Religious Sermons, A reply to Some Criticism of Swami’s Veda Bhashya, Criticism on Monier Williams’ Indian Wishdom etc. अल्पायु में मृत्यु हो जाने के कारण बहुत से उनके ग्रन्थों को सुरक्षित नहीं रखा जा सका जो कि विद्वानों व अध्येताओं के लिए एक बहुत बड़ी हानि है। उनकी पुस्तक वैदिक संज्ञा विज्ञान अर्थात् Terminology of Vedas को आक्सफोर्ड में संस्कृत पाठ्यक्रम में सम्मिलित किया गया था।

पण्डित जी का जीवन बहुआयामी जीवन था। उन पर बहुत कुछ लिखा जा सकता है। इस संक्षिप्त लेख में इतना कहना ही समीचीन है कि उन्होंने अपने जीवन व प्राणों की चिन्ता किए बिना वेदों के प्रचार प्रसार का कार्य किया। वह लोकप्रिय वक्ता व उपदेशक थे। जनता उनके विचारों को ध्यान से सुनती थी और उनकी बातों का पालन करती थी। वह ऐसे वक्ता थे जिनकी कथनी व करनी एक थी। वह अपने जीवन का एक-एक क्षण वैदिक धर्म, संस्कृति के उत्थान व संवृद्धि के लिए व्यतीत करते थे। उनके कार्यों का उद्देश्य वैदिक धर्म का अभ्युदय, समाज सुधार व देश सुधार, अविद्या का नाश व विद्या की वृद्धि, लोगों को ज्ञानी बनाकर देश व विश्व से सभी प्रकार के अज्ञान व अन्धविश्वासों को दूर करना आदि था। वह अपने समय के सबसे कम आयु के अजेय धार्मिक योद्धा थे। उनके कार्यों से वैदिक धर्म का संवर्धन हुआ जिसके लिए देश और समाज उनका ऋणी है। उनकी मृत्यु क्षय रोग से 19 मार्च, सन् 1890 को लाहौर में प्रातःकाल हुई थी। मृत्यु के समय उनकी आयु 26 वर्ष से एक सप्ताह कम थी। परिवार में उनकी माता, पत्नी व दो छोटे पुत्र थे। बड़े पुत्र सदानन्द बड़े होकर प्राध्यापक बने। स्वामी विद्यानन्द सरस्वती जी ने अपनी आत्मकथा **“खट्टी मिट्ठी यादें”** में उनसे भेंट का वर्णन किया है। ‘आत्मा वै जायते पुत्रः’ इस संस्कृत की सूक्ति को लिखकर उन्होंने कहा है कि सदानन्द जी का दर्शन कर मैंने अनुभव किया कि मैंने पं. गुरूदत्त जी के दर्शन कर लिये हैं। छोटे पुत्र का नवम्बर, 1895 में अल्पायु में ही निधन हो गया था। इसका ज्ञान पं. लेखराम जी का दिनांक 15-11-1895 को अपने चाचा श्री गण्डाराम जी को लिखा पत्र है। सहस्रों लोग पं. गुरुदत्त जी की अन्त्येष्टि में सम्मिलित हुए थे। पण्डित जी की मृत्यु पर न केवल आर्य समाज के नेताओं ने अपितु अनेक मतों के विद्वानों ने भी उन्हें श्रद्धाजंलि देते हुए शोक प्रकट किया था। देश की आजादी के प्रसिद्ध नेता लाला लाजपत राय व जीवनदानी महात्मा हंसराज उनके सठपाठी थे तथा स्वामी श्रद्धानन्द उनके कार्यों में सर्वात्मा सहयोगी थे। पण्डित जी ने इतिहास में वह कार्य किया जिसका देश व विश्व पर गहरा प्रभाव हुआ। अपने कार्यों से वह सदा-सदा के लिए अमर रहेंगे। उनका साहित्य, जीवन दर्शन व कार्य ही उनके सच्चे स्मारक हैं। 151वीं जयन्ती पर हम उनका श्रद्धा सहित स्मरण करने के साथ उन्हें अपनी श्रद्धांजलि देते हैं। लेख को विराम देते हुए आर्य जगत के उच्च कोटि के विद्वान, लेखक व इतिहासकार प्रा. राजेन्द्र जिज्ञासु जी की पं. गुरूदत्त विद्यार्थी जी की **‘वे निष्कलंक थे’** शीर्षक से लिखी कुछ पंक्तियां उद्धृत करते हैं। वह लिखते हैं--**‘उनके चरित्र पर कोई धब्बा, कोई कलंक नहीं लगा और उनकी जीवन पद्धति सर्वथा सन्त जैसी सरल और सीधी कही जा सकती है। उनके मुखमण्डल पर सदैव मुस्कराहट रहती थी तथा उनकी आकृति की प्रत्येक भंगिमा में से उनकी विलक्षण बुद्धि के चिन्ह दिखाई देते थे। उनकी आकृति उनके मनोभावों के अनुरूप तथा सर्वथा छल कपट रहित हृदय का दर्पण थी। जिस समाज के साथ उनका सम्बन्ध था, यद्यपि उसमें उनकी विशेष प्रतिष्ठा थी परन्तु उन्होंने उस समाज के प्रबन्ध में कोई भाग नहीं लिया अर्थात् वे पदों की इच्छा नहीं रखते थे। इसका कारण था कि अहंकार का अवगुण उन्हें छू न सका था।’**

**-मनमोहन कुमार आर्य**

**पताः 196 चुक्खूवाला-2**

**देहरादून-248001**

**फोनः09412985121**